IJERMT
International Journal of Engineering Research & Management Technology
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) ISSN: 2348-4039
Volume 11, Issue-3 May-June- 2024 Impact Factor: 7.09
Email: editor@ijermt.org www.ijermt.org

मुगल शासकों का हिन्दू समाज में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण

Nikita Rani, M.A. History, (UGC-NET),

Assistant Professor, B.R.College Higher Education of Technology, Deoband, Maa Shakumbhari University, Saharanpur.

Mail ID:nikitapundir0861@gmail.com

1.1 प्रस्तावना

मुगलकाल मध्यकालीन भारत के इतिहास का महत्वपूर्ण काल का इस काल में अनेक उल्लेखनीय राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिवर्तन हुए, जिनसे देश काल एवं समाज प्रभावित हुआ। निष्चित रूप से इन सबका प्रभाव समाज में स्त्रियों की भूमिका पर भी पड़ा। चूंकि तत्कालीन समाज में हिन्दू और मुस्लिम दो प्रमुख घटक थे, इसलिये इस अध्याय में कुछ बिन्दुओं की अलग–अलग प्रस्तुति हकी गई है।[1]

एस0एम0 जाफर महोदय ने पर्दा को हिन्दू स्त्रियों के लिए धार्मिक कर्त्तव्य कहा है। इसके लिये इन्होंने रामायण और महाभारत से सीता और द्रौपदी का उदाहारण दिया है। धार्मिक ग्रन्थों–ब्रह्मपुराण एवं हरिवंष पुराण से उद्वरण दते हुए उन्होंने समझााने का प्रयास किया है कि पर्दा त्यागना हिन्दू समाज में निदनीय समझाा जाता था तथा सार्वजनिक समारोहों में स्त्रियों के बैठने लिए अलग व्यवस्था थी और उसे पर्दो से ढका जाता था। यह सही है कि अनेक प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में इस तरह का वर्ण है, परन्तु यह उनकी संस्कृति का एक रूप भी और वे घूँघट या चादर ओढ़कर भी सहज रूप से सामाजिक क्रियाकलापों में भाग लेती थी। मुगल काल तक आते–आते पर्दा प्रथा हिन्दू स्त्रियों में आवष्यक प्रथा के रूप में प्रचलित हो चुकी थी। पर्दा प्रथा स्त्रियों (हिन्दू और मुस्लिम) के लिए प्रतिष्ठा का इस प्रकार सूचक बन गई कि अकबर जैसे उदारवादी शासक को भी यह आदेश जारी करना पड़ा कि ‘‘यदि कोई तरूणी गलियों और बाजारों में बिना पर्दे के दिखायी दे अथवा जिसने अपनी इच्छा से पर्दे को तोड़ा हो तो उसे वेष्यालय में लाया जाए और उसे इसी पेशे को अपनाने दिया जाये।

स्त्रियॉ सदैव ही समाज का प्रमुख अंग रही है। प्राचीन भारत में वैदिक काल में स्त्रियॉ पुरूषों के समान ही सामाजिक, बौद्विक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में बराबर का योगदान देती रहीं। परन्तु उत्तर वैदिक काल में धीरे–धीरे उनकी स्थिति में परिवर्तन आना शुरू हो गया और सामाजिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में उनकी स्थिति में निरन्तर कमी होती चली गयी। भारत में मुसलमानों के आक्रमण और स्थायित्व के बाद, विशेष रूप से सल्तनत काल में हिन्दू स्त्रियों की दशा और भी खराब हो गयी।

हिन्दू स्त्रियों में प्रचलित पर्दा प्रथा मुस्लिम स्त्रियों की तरह कठोर नहीं थी। उच्च वर्ग की हिन्दू स्त्रियॉ बहुधा अपने घरों के अन्दर ही रहती थी, परन्तु सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों में वह घर के अन्दर एवं बाहर दोनों जगहों पर प्रत्यक्ष रूप से भाग लेती थी। राजस्थान के राजपूत घरानों में पर्दा प्रथा का अपेक्षाकृत कम प्रचलन था। क्योंकि वहॉ पर स्त्रियां युद्व कला में निपुण होती थी तथा वे शिकार एवं अन्य साहसिक कार्यो में प्रायः भाग लेती रहती थी। इसी प्रकार दक्षिण भारत में विशेष रूप से मालाबार क्षेत्र में कुछ संभ्रांत मुस्लिम परिवारो को छोड़कर पर्दा प्रथा नही थी। हिन्दू समकाज में पर्दा स्त्रियों की उच्च प्रतिष्ठा का द्योतक था। उच्च

[1] ए0 एल0 श्रीवास्तव, मेडिवल इण्डियन कल्चर, आगरा, 1964, पृ0 117

हिन्दू परिवारों के बीच पर्दा प्रथा के प्रचलन का एक अन्य कारण उनके द्वारा शासक वर्ग के आचार–व्यवहार की नकल करने की प्रवृत्ति थी। इस प्रकार पर्दा प्रथा उच्च वर्ग के बीच सम्मान सूचक प्रथा के रूप में प्रचलित हो गई। राजघरानों की स्त्रियॉं घर से बाहर कम ही निकलती थी और वे जब भी बाहर निकलती तो चारों ओर से पर्दो से ढकी तथा नौकरों एवं हिजड़ों से घिरी हुयी पालकी में बैठकर चलती थी। उच्च वर्ग की महिलाएॅं वही तक पर्दा का पालन करती थी, जहॉं तक उनके साधन उन्हें अनुमति देते थे, क्योंकि उस वर्ग की स्त्रियां घरेलू कामकाज से दूर रह सकती थी। साधारण वर्ग की हिन्दू स्त्रियां सामान्यतः आवष्यक कार्यो के लिए घर से बाहर निकलती थी एवं पुरूष स्त्रियों की उचित स्वतन्त्रता में बाधक नहीं बनते थे। मुस्लिम स्त्रियों के विपरीत वे अपने को सिर से पैर तक ढक कर नहीं रखती थी, एक कपड़े का टुकड़ा या दुपट्टा जिससे सिर ढका जाता था। पर्याप्त माना जाता था।[2]

1.2 हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थितिः

इस काल में हिन्दू और मुस्लिम दोनों समुदायों में ही विवाह एक प्रमुख सामाजिक उत्सव था। घरेलू जीवन की इस महत्वपूण्र उत्सव का स्तर एवं उपयुक्त वर की योग्यता का मापदण्ड वधू पक्ष के माता–पिता की आर्थिक स्थिति होती थी। सामान्यतः हिन्दू विवाह में वधू पक्ष क्षरा सबसे पहले वर को पसन्द किया जाता था। विवाह की बातचीत में एक ऐसी स्थिति आ जाती थी, जब दोनों पक्ष विवाह के लिये सहमत हो जाते थे। इस समझौता उचित उत्सव द्वारा मनाया जाता था। इस तिलक या मंगनी कहा जाता था। इसके पश्चात् विवाह की तिथि (लग्न) निष्चित की जाती और विस्तृत तैयारियॉं प्रारम्भ हो जाती। विवाह के दिन वधू के घर के आंगन में एक मण्डप निर्मित किया जाता, जिसे फूलों एवं आम की पत्तियों से सजाया जाता था। इस अवसर पर पास–पड़ोस एवं क्षेत्र के परिचित एवं रिष्तेदार इकट्ठे होते एवं उपस्थित समस्त महिलायें वधू के घर पर विवाह–गीत गाने लगती। दूसरी तरफ आवष्यक तैयारियां पूरी हो जाने पर वर आनंदमग्न बारात के साथ वधू के घर के लिए प्रस्थान करता। बारात आगमन के पश्चात् वधू के द्वारा पर पूजा की जाती थी। पूर्व–निष्चित समय पर वर एवं वधू मण्डप में बैठ जाते। वधू के पिता वर को अपनी पुत्री के औपचारिक समर्पण की क्रिया, जिसे 'कन्यादान' कहते है, करता था। एक स्त्री वर और वधू के वस्त्रों के छोरों को गांठ लगार बॉंध देती, जिसका आशय दोनों का शाष्वत मिलन होता था। इसके पश्चात् पवित्र अग्नि के चारों तरफ 'सप्तपदी' प्रदक्षिणा की क्रिया होती, पुरोहित द्वारा मंत्रोच्चार के साथ विवाह संस्कार पूरा होता।

हिन्दू समाज में कुछ शासक वर्ग के लोगों एवं कुछ धनी व्यक्तियों को अपवाद स्वरूप छोड़कर अधिकांश लोग एक ही विवाह करते थे। डेला बैले के अनुसार ''हिन्दू समाज का पुरूष वर्ग एक स्त्री से ही विवाह करता था और सम्बन्ध–विच्छेद की स्थिति तभी आती थी, ज बवह स्त्री सन्तान पैदा करने मं असक्षम होती थी।'' लड़कियों के विवाह में दहेज देने की प्रथा थी, जिसके अंतर्गत माता–पिता अपनी सामर्थ के अनुसार गहने, कुर्सी–मेज, हाथी, घोड़े, विलास की वस्तु ओर नौकरानियॉं अपनी लड़कियों को देते थे। यह प्रथा धनी वर्ग के लोगों में अधिक थी। ऐसा माना जाता है कि ब्राह्मण वर्ग में दहेज प्रथा नहीं थी। विदेशी यात्रियों ने भी इसका उल्लेख किया है। साधारणतया वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष से दहेज लेते थे। लेकिन कभी–कभी कन्या पक्ष के लोग भी वर पक्ष से दहेज प्राप्त करते थे। यह प्रथा निर्धन वर्ग में अधिक प्रचलित थी। वे धनी लोग जो कम उम्र की कन्या से विवाह करना चाहते थे, कन्या पक्ष को दहेज देते थे।[3]

[2] ट्रवेर्नियर, ट्रेवल्स इन इण्डिया, अनुवाद, वी0 बाल, लंदन, 1899, पृ0 234–35
[3] एफ0ई0 कीय, आपसिट, पृष्ठ 116; एस0 एम0 जाफर, एजूकेशन, आपसिट पृ0 134

इस्लाम के आगमन के साथ हिन्दू समाज में परिवर्तन होने प्रारम्भ हो गये। पहला परिवर्तन हम पर्दा प्रथा के विकास के रूप में देखते हैं। पर्दा शब्द का तात्पर्य है ओट के लिये कोई वस्त्र, साधारणतः इसका तात्पर्य घूँघट से होता है। स्त्री के लिये इसका प्रयोग किए जाने पर यह स्त्री को अलग कक्ष में, या भवने से पृथक हिस्से में रखा जाना प्रकट करता है। पर्दा के उद्‌भव के सम्बन्ध में अनेक विरोधाभास पूर्ण सिद्वान्त रखे जाते है। कुछ विद्वानों का कथन है कि इस प्रथा के उत्थान के लिए मुसलमान उत्तरदायी है। दूसरी तरफ कुछ विद्वान इतिहासकार यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि पर्दे की प्रथा हिन्दू समाज में मुसलमानों के भारत में राज्य स्थापित करने के बाद आई। इन विद्वानों के अनुसार घूँघट की प्रथा अति प्राचीन है और इस सिद्वान्त का समर्थन प्राचीन हिन्दू सामाजिक इतिहास के कई उदाहरण देकर किया गया है। वस्तुतः मुस्लिम आक्रमणकारियों के भारत में प्रवेश से पूर्व स्त्रियों में पर्दा प्रथा कुछ अंशों में विद्यमान तो थी लेकिन इस तरह प्रचलित नहीं थी। प्राचीन भारत में स्त्रियों को थोड़ा–बहुत अलग रखा जाता था और स्त्रियां घूँघट का पालन करती थी, किंतु पर्दे का वर्तमान विस्तृत और संस्थागत रूप मुस्लिम शासन के समय प्रारम्भ होता है। पर्दा का एक प्रथा के रूप में प्रचलन और उसके वर्तमान स्वरूप के विकास में अनेक तत्वों का योगदान था, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण हिन्दू समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी प्रतिषठा एवं पवित्रता को सुरक्षित रखने सम्बन्धी विचारधारा थी। इसक एक व्यवहारिक कारण असुरक्षा की भावना थी, जो विशेषकर मंगोलों के आक्रमण के कारण बनी रही।

निम्न वर्ग की हिन्दू स्त्रियां पर्दा प्रथा से पूर्ण रूप से मुक्त थी। ये मुख्यतः कृषि कार्यो, सफाई एवं अन्य धार्मिक एवं सामाजिक कार्यो में सहयोग में लगी रहती थी। डा0 के0 एम0 अशरफ के अनुसार, ''कृषक–स्त्रियों का विशाल समुदाय कोई चादर या विशेष रूप से बना पर्दा नहीं ओढ़ता था और अलग– अलग नही रहता था, वे किसी अजनबी के सामने से निकलते समय साड़ी या अन्य शिरोवस्त्र का पहलू चेहरे पर थोड़ा खिसका लेती थी, नही तो वैसे उनके हाथ और चेहरे बिल्कुल खुले रहते थे।'' ये कृषक एवं मजदूर वर्ग की स्त्रियां अपने पति के सभी कार्यो में सहयोग करती थी एवं घर की अर्थव्यवस्था में भी योगदान देती थी।

इस काल में बाल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। डा0 रेखा मिश्रा के अनुसार हिन्दू समाज में बाल विवाह मुगल काल की एक विशेषता थी। लड़कियों का विवार 9 या 10 वर्ष में कर दिया जाता था। जनसाधारण वर्ग के लोग अपनी सन्तानों को पढ़ाने के बजाय बालकों को कृषि कार्य एवं अन्य पारिवारिक कुटीर उद्योगों में लगाना एवं बालिकाओं को घरेलू कार्यो में दक्ष बनाना अधिक पसन्द करते थे। समाज के सभी वर्गो के लोग कम उम्र में ही अपनी बालिकाओं के विवाह हेतु प्रयास करने लगते थे। तत्कालीन सामाजिक परम्परा के अनुसार 10 वर्ष की आयु के बाद बालिकाओं का अविवाहित रहना सामाजिक दृष्टिकोण से अनुचित समझाा जाता था। उदाहरण स्वरूप – पेशवा राज्य का एक ब्राह्मण सैनिक अधिकारी स्वयं कहता है कि वह इस कारण अधिक चिन्तित है कि उसकी पुत्री की आयु 9 वर्ष हो चुकी है और उसका विवाह अभी तय नहीं हो पाया है। अगर वह अगले वर्ष तक अपनी पुत्री का विवाह तय नहीं कर पाया तो उसकी आयु 10 वर्ष की हो जायेगी और तब उसकी पुत्री के बारे में लोग अप्रिय बाते कहने लगेंगें। मुकुन्दराम के अनुसार, एक पिता जो अपनी पुत्री की शादी उसके नवे वर्ष में कर देता था, सौभाग्यशाली समझा जाता था तथा यह माना जाता था कि उस पर ईष्वर की कृपा दृष्टि है।[4]

इस बाल विवाह प्रथा में वर या वधू ढूंढने, विवाह निष्चित करना एवं विवाह से सम्बन्धित रिवाजों एवं परम्पराओं का निर्वाह करना माता–पिता एवं करीबी रिष्तेदारों का उत्तरदायित्व होता था। उस समय बालक या

[4] पी0एल0 रावत, आपसिट, पृ0 112

बालिका जिनका विवाह होना था, वे इन सारी घटनाओं से अनभिज्ञ ही रहते थे। इतनी कम उम्र में शादी हो जाने की वजह से वर और वधू दोनों को अपनी पसन्द के साथी के विषय में विचार करने का मौका ही नहीं मिल पाता था। विवाह से कुछ दिन पूर्व से ही बालिका वधू पर घर से बाहर निकलने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता था। सम्राट अकबर ने बाल विवाह प्रथा में हस्तक्षेप किया। उसने लड़को के लिए 16 वर्ष और लड़कियों कि लिए 14 वर्ष विवाह की न्यूनतम आयु निष्चित की। लेकिन उसके नियमों का कहां तकब पालन किया गया यह कहना मुष्किल है। इस काल में लोग अधिक धन मिलने की लालसा में असमान विवाह भी करते थे। कुछ आर्थिक रूप से कमजोर लोग अपने बालकों का विवाह अधिक दहेज के लालच में ऐसी स्त्रियों से भी कर देते थे, जिसकी उम्र उस बालक की उम्र से अधिक होती थी। जब इस बुराई प्रचलन अधिक बढ़ गया तो अकबर ने इस संदर्भ में एक आदेश पारित किया कि ''यदि किसी स्त्री की उम्र उसके पति से 12 वर्ष अधिक हुई तो उस विवाह को गैर–कानूनी माना जायेगा।'' [5]

तत्कालीन उच्चवर्गीय राजपूत घरानों में लड़कियों को अपना पति चुनने की अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता थी। रूपनगर की राजकुमारी ने मेवाड़ के शासक राणा राजसिंह की वीरता से प्रभावित होकर उसे पति के रूप में स्वीकार किया और राणा राजसिंह को इसकी जानकारी स्वयं राजकुमारी ने अपने सूत्रों से करवाई एवं सुरथान की पुत्री ताराबाई ने अपने विवाह की यह शर्त रखी कि वह उसी राजपूत युवक से विवाह करेगी, जो उसके पिता के साम्राज्य क्षेत्र को पठानों से वापिस दिलायेगा। पृथ्वीराज के भाई जयमल ने यह शर्त पूरी की और उससे विवाह किया। इसी तरह मोहिल सेनापति की सुन्दर पुत्री कर्मदेवी ने मांडुर के राव से विवाह करने से इंकार कर दिया और पुगाल राज्य के उत्तराधिकारी साधू से प्रभावित होकर विवाह किया। मांडुर के राव ने इसे अपना अपमान समझा और जब कर्मदेवी बिदाई के पश्चात् अपनी ससुराल जा रही थी तो रास्ते में उसने अपने सैनिकों के साथ आक्रमण किया। इस युद्व में साधु वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारा गया और कर्मवती सती हो गयी। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कुलीन राजपूत परिवारों की कुछ लड़कियां स्वयं योग्यता और वीरता के आधार पर पति को पसन्द करती थी।

इस काल में स्त्रियों को विवाह के पश्चात् पति और सास–ससुर की सेवा करना प्रमुख कर्त्तव्य था। अपने इस कर्त्तव्य का पालन नहीं करने वाली स्त्रियों के साघ अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता था। साधारणतया स्त्री को अपने ससुराल में सारे घरेलू कार्य करने पड़ते थे, इसके अलावा घरेलू पशुओं की सेवा और कृषि कार्य में सहयोग भी करना पड़ता था। घर के रख–रखाव में उसकी काफी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। सास की मृत्यु या घर में अनुपस्थित रहने पर वह घर की मालकिन के रूप में स्थापित हो जाती थी। वह घरेलू खर्चो का हिसाब रखने व घर के खर्च पर नियन्त्रण रखने का भी प्रयास करती थी। आवष्यक वस्तुओं की मात्रा की जानकारी रखना एवं अतिथियों (विशेषकर महिलाओ) का स्वागत करना आदि भी उसका कर्त्तव्य था। उसे अपने पति को एक समर्पित पत्नी के रूप में प्रस्तुत करना होता था, जोकि अपने पति के भोजन करने से पूर्व भोजन ग्रहण नहीं करती थी। धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों एवं त्यौहारों पर उसकी व्यस्तता बढ़ जाती थी। पति के साथ पत्नी के सम्बन्ध काफी सम्मानजनक होते थे। जहॉगीर ने तुजुक–ए–जहॉगीरी में लिखा है कि ''हिन्दुओं में यह कहावत प्रचलित है कि अपने सामाजिक जीवन में पुरूष्ज्ञ बिना स्त्री के सहयोग के कुछ भी बेहतर नहीं कर सकता। वे स्त्रियों को अपनी अर्धागिनी मानते थे। दोनों ही एक दूसरे के विचारों का सम्मान करते थे। उच्च एवं सम्मानिक घरानों की स्त्रियां मुख्य रूप से राजपूतानियां अपने आत्म सम्मान से कभी भी समझौता नही करते थी। कर्नल टाड लिखते है कि ''अकबर के राजा जयसिंह ने एक बार अपनी पत्नी जोकि हडौती की राजकुमारी थी, का यह मजाक उड़ाया कि उनके वस्त्र अत्यधिक साधारण है तथा उनकी राजधानी की लड़कियों

[5] विद्याभूषण, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लाजिक, पृ0 461 एवं 486

के वस्त्र भी उनसे बेहतर होते है। इस बात से चिढ़कर राजकुमारी ने कहा कि ''आपसी सम्मान सिर्फ खुशियों के लिये ही नहीं होता। बल्कि कई नैतिक मूल्यों को भी जन्म देता है। यदि भविष्य में कभी उसका अपमाना किया गया तो राजुकमार पायेंगे कि कोटा की पुत्री तलवार का प्रयोग भी प्रभावित ढंग से कर लेती है। राजकुमारी के उपर्युक्त शब्द उच्च्य राजपूत परिवारों की स्त्री पुरूष सम्बन्धो पर स्पष्ट प्रकाश डालते है। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश हिन्दू सफल दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते थे। औरतें भावनात्मक रूप से पति का आदर करती थी तथा उनके पति उन्हें खुशियां एवं संरक्षण प्रदान करते थे। गर्भवती होने पर उस स्त्री के प्रति पारिवारिक लोगों का विशेष रूप से स्त्रियों का प्रेम सहज रूप से बढ़ जाता था। बार्टो लोमियो कहता है कि गर्भवती स्त्री को न केवल उसके पति एवं ससुराल वालो से, बल्कि पास–पड़ोस के लोगों से भी प्रेमत एवं सम्मान का भाव मिलता था, क्योंकि गर्भधारण को लक्ष्मी का वरदान माना जाता था।[6]

सन्तान के रूप में बालिका शिशु का आगमन परिवार के लिए दुःख का कारण होता था। जिस स्त्री को लगातार पुत्रियां पैदा होती थी, उसे अशुभ माना जाता था। लोग कन्या के जन्म को बुरे दिन के रूप में लेते थे। राजपूत लोग तो कन्या के जन्म को एक अभिशाप मानते थे। यहॉ तक कि राज परिवारों में भी यह अन्तर स्पष्ट दिखाई देता था। पुत्री पैदा होने पर सिर्फ औरतें खुश होती थी, जबकि राजकमार पैदा होने पर सारा राजदरबार खुशियां मनाता था। साधारणतः पुत्र होने की स्थिति में उस स्त्री विशेष की प्रतिष्ठा परिवार में बढ़ जाती थी। प्रत्येक शुभ–अशुभ कार्यो में अन्धविष्वासों के आधार पर बहुत सारी रीतियां प्रचलित थी। उदाहरणार्थ सन्तान पैदा होने के कुछ दिन बाद तक उस स्त्री को घरों में नियुक्त दासियां ही स्पर्श कर सकती थी। घर के लोगों को उस स्त्री से इस अवधि में शारीरिक स्पश्र की मनाही होती थी।

हिन्दू स्त्रियों के प्रति जो व्यवहार उसके पति या उसके अन्य पारिवारिक लोगों द्वारा विवाह उपरान्त किया जाता था, वह उन स्त्रियों के जीवन शैली का एक अंग बन गया था और स्त्रियां इसे सहज रूप में स्वीकार कर चुकी थी। हिन्दू पुरूष बिना अपनी पत्नी के सहयोग के धार्मिक एवं सामाजिक क्रियाओं को कार्यान्वित नहीं कर सकते थे। इस कारण पत्नी की आवष्यकता उसके लिए और उसके परिवार के लिए बढ़ जाती थी। हिन्दुओं में परिवार में पत्नी की उपयोगिता एवं महत्व का उल्लेख जहांगीर ने अपनी आतमकथा में किया है। हिन्दुओं में सामान्यतः एक पत्नी रखने की प्रथा आदि अनेक ऐसे कारण थे, जिसके फलस्वरूप सामान्य हिन्दू स्त्री का वैवाहिक जीवन सामान्य मुस्लिम स्त्री के वैवाहिक जीवन से अधिक सफल था।

हिन्दुओं में पति की असामयिक मृत्यु के पश्चात् पत्नी को दूसरा विवाह करने की अनुमति नहीं थी। यद्यपि हिन्दुओं में निम्न वर्ग के कुछ लोगों में विधवा विवाह का प्रचलन था। इन निम्नवर्गीय लोगों का एक अलग सामाजिक जीवन होता था, 'अछूत' कहे जाने वाले ये लागे नगर या सामान्य आबादी से दूर एक छोटी बस्ती के रूप में होता था। इन उपरोक्त निम्न जाति के लोगों को छोड़कर, सम्पूर्ण हिन्दू समाज में विधवा पुनर्विवाह न के बराबर था। हिन्दू स्त्रियॉ अपने पति की मृत्यु के पश्चात् भी उनके प्रति भावनात्मक लगाव रखती थी। हिन्दू समाज में विशेष रूप से राजपूत स्त्रियों में सती प्रथा प्रचलित थी। इसका एक कारण यह भी था कि समाज में विधवा हिन्दू स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा जाता था एवं सामाजिक एवं धार्मिक कार्यो में उनकी उपस्थिति को शुभ नहीं माना जाता था। ऐसी स्त्रियां न अच्छे वस्त्र पहन सकती थी, न ही आभूषण पहन सकती थी और उन्हें लम्बे बाल रखने की अनुमति भी नहीं थी। ऐसी स्त्रियों क्ष्ै उनके परिवार के लोग भी अच्छी दृष्टि से नही देखते थे। विधवा स्त्री से निम्न स्तर के घरेलू कार्य करवाये जाते थे। ये सारी विषम

[6] बादशहनामा, जिल्द–1, पृ0 268–69

परिस्थितियॉ विधवा हिन्दू स्त्री को सती होने के लिए बाध्य करती थी। इस सन्दर्भ में विधवा स्त्री के परिवार के लोग भी कम दोषपूर्ण नहीं होते थे।[7]

एक पुत्री, पत्नी एवं विधवा के रूप में स्त्री की समाज में चाहे जैसी भी स्थिति रही हो, उसे एक मॉ के रूप में समाज में निष्चित रूप से सम्मानित स्थान प्राप्त था। वह माँ के रूप में अपनी सन्तान के सबसे अधिक निकट होती थी और बालक के भविष्य निर्माण एवं समाज के लिये उपयोगी बनाने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। राजपूत अपनी माता का बहुत सम्मान करते थे और उनके समाज में माता का स्थान ऊँचा था। माता के रूप में राजपूत स्त्रियां अपनी संतान के आरम्भ। से ही वीरता के भाव पैदा करती थी। युद्व के मैदान के लिये राजपूतों में उनकी माता द्वारा यह भावना भर दी जाती थी िकवे अपनी मॉ के दूध का कर्ज अदा करें। मेवाड़ के राजा राणा संग्राम सिंह द्वितीय प्रत्येक सुबह भोजन ग्रहण करने से पूर्व अपनी मॉ को प्रणाम अवष्यक करते थे। राजपूत अपनी माता की आज्ञा पालन किसी भी कीमत पर करते थे। अपनी माता के आदेश पर सोलह वर्षीय पत्ता अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रति मोह त्याग कर चित्तौड़ पर अकबर की सेना के आक्रमण के समय केसरिया वस्त्र पहनकर युद्व के मैदान में जा पहुंचा। युद्व में बहादुरी से लड़ते हुए अपीन जान दे दी और उसकी पत्नी ने जौहर प्रथा का पालन किया। मातृभक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण तत्कालीन राजस्थान के इतिहास में मिलते है।

मुस्लिम समुदाय में भी माता को अत्यन्त सम्मानित स्थान प्राप्त था। शासक से लेकर निम्न सबके तक के लोग माता और अन्य बुजुर्ग स्त्रियों का सम्मान करते हुए, उनके आदेशों का पालन करते थे। समकालीन इतिहासकारों ने मुगल शासको द्वारा अपनी माता के प्रति आदर व्यक्त करने के बारे में विस्तृत विवरण दिया है। मुगल शासक अपनी मॉ के सम्मुख उपस्थित होने पर सम्मान के प्रतीक के रूप में कुर्निश, सिजदा तथा तस्लीम करते थे। जहॉगीर लिखता है कि जब मैं अपनी माता के दर्श के लिए धार (लाहौर के निकट) गया तो आज्ञाकारी पुत्र के रूप में उसके सम्मुख कुर्निश, सिजदा और तस्लीम की पद्वति अपनाई। बाबर भी इसी प्रकार से अपनी सौतेली दादी मॉ का आदर देता था। मुगल सम्राट अपने जन्मदिन पर राजकुमारों एवं अमीरों के साथ अपनी मॉ का आर्शीवाद लेने अवष्य जाते थे। मुगल काल में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है, जब माता के रूप में स्त्रियों ने मध्यस्थता कर सफलतापूर्वक आपसी झगड़ों का निपटारा किया। इतिहासकार बदायुॅनी और मुकरराखान के बीच हुए विवाद को मुकरराखान की माता ने सफलतापूर्वक सुलझाया था। इसी प्रकार जब जहॉगीर ने अकबर के विरूद्व विद्रोह कर दिया था तो सलोमा बेगम के प्रयासों के फलस्वरूप ही अकबर ने उसे क्षमा किया था। सम्राट शाहजहॉ औरंगजेब की राज्यविरोधी गतिविधियों के कारण उससे नाराज था और उसे दण्ड देने की सोच रहा था, परन्तु अपनी पुत्री जहॉआरा की मध्यस्थत के कारण उसे क्षमा कर दिया।

पति की मृत्यु के पश्चात् कुछ परिस्थितियों में हिन्दू पत्नी के आग में जलने की क्रिया को सती प्रथा कहा जाता था और जो स्त्री जलती थी, उसे सती कहा जाता था। प्राचीन काल में स्वेच्छा से सती होने के उदाहरण हमें मिलते है, जिनमें सर्वप्रथम लिखित अभिलेख 510 ई0 का ऐरण (म0प्र0) अभिलेख उल्लेखनीय है। लेकिन बाद में विधवाओं को उनकी इच्छा के विरूद्व भी सती होने के लिए विवश यिा जाता था। साधारणतः यह प्रथा हिन्दू समाज के उच्च वर्ग तक सीमित थी और राजपूतों की वीर जातियां इसका विशेष समर्थन करती थी। अधिकतर ब्राह्वाण, क्षत्रिय और वैयर परिवार की स्त्रियॉ सती होती थी। मुगल काल में सती प्रथा का खूब प्रचलन था, यद्यपि मुगलों ने इसे रोकने का प्रयास भी किया। तत्कालीन समय में निम्न वर्ग के कुछ लोगों का छोड़कर हिन्दू विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नही थी। विधवा को अपनी पति के मृत शरीर के साथ जलना पड़ता

[7] एस0एम0 जाफर, सम कल्चरल ऐस्पेक्टस ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, दिल्ली, 1972, पेज 76

था। ऐसा न करने पर उसे अपमानजनक और मुष्किलों से भरा हुआ जीवन व्यतीत करना पड़ता था। समाज ऐसी विधवाओं को घृणा की दृष्टि से देखता था, जो सती होने से इन्कार करती थी। वे अच्छे वस्त्र एवं आभूषण नही पहन सकती थी तथा उन्हें लम्बे बाल रखने की भी अनुमति नही थी। अबुल फजल ने लिखा है कि लोगों में यह धारणा थी कि दूसरे संसार में पित की आत्मा को एक स्त्री की आवष्यकता होती है।

1.3 निष्कर्ष

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में हमारे पास सती होने का एक सजीव एवं पूर्ण वर्णन उपलब्ध है, जो कि प्रसिद्व मुस्लिम यात्री इबनबतूता की उपस्थिति में हुआ। उसके अनुसार अपने पति की मृत्यु का समाचार सुनकर सती ने स्नान किया और अपने सर्वोत्त वस्त्र और अलंकार धारण किए। उसे शमशान भूमि तक पहुंचाने के लिए शीघ्र ही एक जुलूस तैयार हो गया। ब्राह्मण और अन्य सम्बन्धी जुलूस में सम्मिलित हो गये और उन्होंने विधवा के महान सौभाग्य के लिये शुभकामनाओं की वर्षा की। वह स्त्री अपने दाहिने हाथ में एक नारियल और बाएं हाथ में एक दर्पण लेकर घोड़े पर सवार हो गयी। संगीत ओर बाजों के साथ जुलूस ने छायादार उपवन की ओर प्रस्थान किया। इस उपवन में एक तालाब था और एक पत्थर की सम्भवतः शिवमूर्ति थी। तालाब के निकट एक विशाल चिता थी, जिस पर लगातार तिल का तेल डाला जा रहा था और जनसाधारण की दृष्टि से बचाने के लिये उसे घेरकर ओट में कर दिया गया था। वहां पहुंचकर सती होने वाली स्त्री ने पहले इस तालाब में स्नान किया और तब एक–एक करके वह अपने सुन्दर वस्त्रों और अलंकारो को दान करने लगी। अन्त में उसने एक बिना सिला मोटा वस्त्र पहन लिया। फिर साहस के साथ वह घिरे हुये स्थान की ओर बढ़ी, जो अभी तक उसकी दृष्टि की ओर में था, उसने अग्नि देवता की प्रार्थना करने के लिए हाथ जोड़कर प्रणाम किया, कुछ क्षण तक वह ध्यान मग्न रहीं, फिर अचानक दृढ़ निष्चय के साथ उसने स्वयं को लपटों में झोंक दिया। ठीक इसी क्षण, दूसरी ओर तुरही ढोलों और अन्य बाजों से कोलाहल किया गया, जो स्पष्टतः दृष्य की वीभत्ससा से लोगों का ध्यान बंटाने के लिए किया गया था। अन्य लोगों ने, जो सती की क्रियाओं को ध्यान से देख रहे थे, जलती हुइ स्त्री के शरीर पर तुरन्त लकड़ी के भारी कुन्दे डाल दिए, जिससे वह बच न सके। इबनबतुता यह दृष्य देखकर बेहोश हो गया। इस कारण उसका वर्ण में इससे आगे की जानकारी नही मिलती। यह सती प्रथा का लगभग पूर्ण एवं संजीव वर्णन है।

मुगल काल में जौहर प्रथा की एक सामाजिक बुराई के रूप में विद्यमान थी। जौहर प्रथा प्रायः राजपूतों तक ही सीमित थी, यद्यपि अन्य उदाहरण भी मिलते है। जब राजपूत सरदार एवं सैनिक युद्व पराजित होने लगते तो वे अपने परिवार की स्त्रियों एवं बच्चों को किसी भवन में बन्द करके उसमें आग लगवा देते थे। इसके पश्चात् राजपूत युद्य के मैदान में शत्रु पर भीषण प्रहार करते हुये अपने प्राणों की आहुति दे देते थे। दूसरे रूप में, राजपूतों की पराजय का समाचार सुनकर शत्रु सेना के राजमहल एवं रानिवासों में प्रवेश करने से पहले ही राजपूत स्त्रियां पहले से ही तैयार विशाल आग के घेरे में पहुँचकर सामूहिक रूप से आत्मदाह कर लेती थी। इसे ही जौहर कहा जाता था। मुगल काल में जौहर के अनेक दृष्टान्त मिलते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए0 एल0 श्रीवास्तव, मेडिवल इण्डियन कल्चर, आगरा, 1964, पृ0 117
2. ट्रवेर्नियर, ट्रेवल्स इन इण्डिया, अनुवाद, वी0 बाल, लंदन, 1899, पृ0 234–35
3. एफ0ई0 कीय, आपसिट, पृष्ठ 116; एस0 एम0 जाफर, एजूकेशन, आपसिट पृ0 134

4. पी0एल0 रावत, आपसिट, पृ0 112
5. विद्याभूषण, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लाजिक, पृ0 461 एवं 486
6. बादशहनामा, जिल्द–1, पृ0 268–69
7. एस0एम0 जाफर, सम कल्चरल ऐस्पेक्टस ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, दिल्ली, 1972, पेज 76.